मांसभोजनविचार के प्रथम भाग

का उत्तर ॥

अर्थात्

योधपुर के नामछिपे एक उपदेशक ने आयुर्वेद
सुश्रुत के प्रमाणों से मांसभक्षण करना सिद्ध
किया था

उस का

अच्छे २ प्रबल पुष्ट युक्ति प्रमाणों द्वारा भीमसेन
शर्मा ने उत्तर दिया

और

बाबू पूर्णसिंह वर्मा के प्रबन्ध से

सरस्वतीयन्त्रालय-इटावा में छपा

संवत् १९५३ वि० । ता० ३ । १२ । ९६

प्रथमबार १००० पु०

मूल्यप्रतिपु० -)॥

मांसभोजनविचार प्रथम भाग का उत्तर ॥

यद्यपि इस प्रथम भाग पर कुछ लिखने का हमारा संकल्प इसलिये नहीं था कि यह सुश्रुतादि आयुर्वेद कोई धर्मशास्त्र नहीं है। और हमारा यह पक्ष पूर्व से भी न था न अब है कि मांसभक्षण पहिले समय में कोई नहीं करता था वा किसी ग्रन्थ में मांसभक्षण नहीं लिखा किन्तु हमारा साध्य पक्ष सदा से यही है कि किसी शास्त्र कारने मांसभक्षण को धर्म नहीं माना किन्तु धर्माधर्म के विचार के अवसर पर प्रायः सभी सच्छास्त्रों में मांसभक्षण पाप माना गया है। इसी के अनुसार सुश्रुत में भी धर्म मान कर मांस को भक्ष्य नहीं लिखा तो फिर उस का उत्तर क्या लिखें तथापि अब अनेक धर्मशील महाशयों की सम्मति से इस विषय पर संक्षेप से कुछ लिखना चाहते हैं। यहां भी मांसभक्षण वालों की ओर के कथन के आरम्भ में मांसाशी वा मांसोपदेशक का संकेत मां० लिखेंगे तथा अपनी ओर से उत्तरदाता का उ० लिखेंगे।

मांशासी-बहुत लोग कहते हैं कि मांस भोजन की विधि महर्षि धन्वन्तरि जी ने किसी स्थल पर नहीं लिखी।

उत्तरदाता—इस प्रकार मांसोपदेशक जी ने प्रश्न गढ़ कर स्वयं उत्तर दिया है कि " इस पुस्तक को आप लोग आद्यन्त विचारेंगे तो इस का उत्तर अवश्य ही आ जावेगा।" बड़े आश्चर्य का स्थान है कि विधि शब्द का अर्थ वा

सिद्धान्त न जान कर लिखना कैसा महा अज्ञान है। विधि शब्द का अर्थ पूर्वमीमांसाशास्त्र के प्रारम्भ में लिखा है कि "चोदना लक्षणोऽर्थो धर्मः" चोदना नाम विधि जिस के लक्षण नाम देखने जानने का साधन है वह धर्म है। और विधि का अर्थ नियोग आज्ञा (हुक्म) है कि ऐसा करो, वा ऐसा २ करना धर्म है, ऐसा ही करना चाहिये, वा करना योग्य है। ऐसा मत करो, ऐसा काम नहीं करना चाहिये, ये सब विधि के स्वरूप हैं ऐसे ही वेदस्थ विधिवाक्यों से धर्म लखाया गया वा लखा जाता है इसी लिये वह धर्म चोदना लक्षण कहाता है। वेद के विधिवाक्य प्रधान वा मुख्य कर धर्म के लक्षक हैं और उसी चाल का अनुकरण लेकर बनी स्मृतियों के वाक्य भी वेदानुकूल होने से धर्मलक्षक हैं। इसी से उन का नाम धर्मशास्त्र है। क्योंकि उन मनुस्मृति आदि ग्रन्थों में प्रायः वेद के अभिप्रायों को लौकिक संस्कृत की चाल में प्रकारान्तर से ऐसा वर्णन किया है जिस से मनुष्यों की समझ में शीघ्र आजावे। इस से सिद्ध हुआ कि विधिवाक्यों का प्रचार मुख्य तो वेद में द्वितीय कक्षा में मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्रों में है किन्तु अन्य ग्रन्थों में विधिशब्द का वाच्यार्थ नहीं घटता। यद्यपि व्याप्त विचार से देखें तो वेद के सब शब्द व्याप्त अर्थ के बोधक हैं इसी से वे सामान्य यौगिकार्थ माने जाते हैं तदनुसार विधि शब्द का अर्थ भी कुछ २ सर्वत्र मिलेगा। तथापि जैसे सब शास्त्रों

में अन्य २ शास्त्रों के विषयों का प्रसङ्गानुसार कुछ कथन वा वर्णन आजाने पर भी उस का नाम वही रक्खा वा माना जाता है कि जिस विषय का वर्णन उस में प्रधानता से किया गया हो। जैसे महाभारत पुस्तक के कई स्थलों में सांख्य वा योगशास्त्र सम्बन्धी विषयों का वर्णन आने पर भी महाभारत का नाम सांख्य वा योग नहीं कहा वा माना जाता किन्तु महाभारत इतिहास ही कहा जाता है ऐसे ही सुश्रुतादि ग्रन्थों में कहीं २ धर्मानुकूल विधिवाक्य हैं तो भी वह विधिशास्त्र नहीं माना जायगा। जब सुश्रुत कोई विधिशास्त्र ही नहीं तो उस के विषय में विधि होने का प्रश्न तथा उत्तर गढ़ना मांसोपदेशक जी का महामोह नहीं तो और क्या है? तथा इस प्रथम भाग में मांसोपदेशक जी ने जितने प्रमाण सुश्रुत के लिखे हैं उन किसी में भी विधिक्रिया का प्रयोग नहीं है केवल यही सर्वत्र लिखा है कि अमुक २ प्राणियों के मांस में अमुक २ गुण वा अवगुण हैं। यदि कहीं सहस्र वाक्यों में से एक दो में विधिक्रिया भी हो तो वह इतने से विधिशास्त्र नहीं हो सकता ऐसा हो तो सभी व्याकरण सभी न्याय तथा सभी ग्रन्थ सांख्य कहाने चाहिये। वेदादि की अपेक्षा सुश्रुतादि में आया कोई विधिवाक्य भी धर्म के साथ विशेष सम्बन्ध न होने से विध्याभास कहावेगा। इस से सिद्ध हो गया कि सुश्रुत विधिशास्त्र नहीं और न उस में मांस के लिये विधि है किन्तु जैसे मल मूत्र वीर्य

रुधिरादि के गुण वर्णन करना सुश्रुत का काम है वैसे मांस के भी गुण दिखाना उस शास्त्र का एक अङ्ग है ।

मां०—मूत्रादि तो बीमारियों की निवृत्ति के उपायों में लिखे हैं यदि रोगनिवृत्ति के लिये मूत्रादि को कोई खावे तो कुछ पाप नहीं है परन्तु मांस को आहारों में भोजनविधि में और गर्भाधान में खाने की आज्ञा प्रदान की है। और कृतान्न में तो मांस का आहार भली प्रकार विधान किया है ।

उ०—यहां भी मांसोपदेशक जी ने प्रश्न और उत्तर गढ़ लिये हैं । हम पूछते हैं कि मांसोपदेशक जी ने व्याधिसमुद्देशीय अध्याय सुश्रुत का क्या नहीं देखा ? जब कि क्षुधा पिपासा भी वहां नित्य के रोगों में गिनाये हैं इस से खाने पीने के सभी पदार्थों का वर्णन बीमारियों की निवृत्ति के लिये ही हुआ तो मूत्रादि का वर्णन बीमारियों के लिये ही बताना कितना अज्ञान है ? । हमारी समझ में वैद्यकशास्त्र में सब प्रकार के मनुष्यों को रोगादि के भिन्न २ उपाय यथारुचि वा प्रकृति के अनुसार बताये हैं उन में शुद्ध प्रकार के औषध शुद्धप्रकृति वाले धर्मात्माओं के लिये हैं और मलमूत्र मांस मद्यादि निकृष्टप्रकृति कर्म धर्म रहित मनुष्यादि के लिये हैं । यदि कोई कहे कि क्या नीचों के लिये मांस मद्यादि का विधान होना वा करना चाहिये तो उत्तर यह है कि उन के शरीर का अधिकांश निकृष्ट वस्तुओं

से बना है इस कारण अच्छे शुद्ध पदार्थ उन को शीघ्र गुण नहीं करते प्रकृति से विरुद्ध होते हैं और निकृष्ट पदार्थ प्रकृति के अनुकूल होने से शीघ्र गुण दिखाते हैं। परन्तु यदि वे अपनी नीचता छोड़ें तो उन का कल्याण हो इस से उन के लिये विधान तो यही होना चाहिये कि धीरे २ क्रमशः निकृष्ट पदार्थों का अभ्यास न्यून करते जावें और उत्तम शुद्ध सत्त्वगुण वर्द्धक पदार्थों का सेवन धीरे २ बढ़ाते जावें यही विधि उन को है किन्तु एक साथ परिवर्त्तन से दुःख अधिक हो सकता है। इस में सन्देह नहीं कि सुश्रुत के आहार वा कृतान्नवर्ग में मांस का बहुत वर्णन किया गया है जो बात प्रत्यक्ष है उस के लिये कोई न लिखे तो भी सभी जानते हैं पर शोचना केवल यह है कि जो पदार्थ जगत् में खाने पीने के काम में आते थे वा आते हैं जिन से क्षुत्पिपासादि व्याधियों की निवृत्ति होती थी वा होती है उन सब का वर्णन करना सुश्रुत का विषय है। व्याकरण में परस्त्रीगमन, चोरी, द्यूत, व्यभिचार, मिथ्या अत्याचारादि शब्दों की भी सिद्धि दिखायी जाती है चोरी आदि शब्दों का पठन पाठन भी होता है। और जगत् में परस्त्रीगमनादि भी सदा से होते ही आते हैं पर व्याकरण यह व्यवस्था नहीं करता कि चोरी करना किस का काम है किस का नहीं। जैसे धर्म शब्द के सिद्ध करने से व्याकरण धर्मशास्त्र नहीं होता वैसे अधर्म की सिद्धि दिखाने से वह अधर्मशास्त्र भी

नहीं कहा जा सकता। धर्म अधर्म आदि जिन २ शब्दों का लोक में प्रचार देखा उन २ सब की सिद्धि दिखाना व्याकरण का मुख्य उद्देश है वैसे जो पदार्थ लोगों के खाने पीने के व्यवहार में आते देखे उन २ सब के गुण अवगुण दिखाना चिकित्साशास्त्र का विषय वा प्रधान उद्देश है किन्तु कौन पदार्थ धर्मानुकूल भक्ष्य तथा कौन अभक्ष्य है यह विषय वैद्यकशास्त्र का नहीं ॥ गेंहूं, रोटी, पूरी, खीर आदि में जो २ गुण सुश्रुतकार ने लिखे हैं वे चुरा कर लाये गेंहूं आदि में न घटें यह नहीं हो सकता अपने दूध में जो गुण होगा वही गुण चुराये में भी अवश्य होगा। पर चुराये गेंहूं दूध आदि का खाना धर्म विरुद्ध और अपने का खाना धर्मानुकूल है यह विषय वा उद्देश सुश्रुत का नहीं है किन्तु यह धर्मशास्त्र का विषय है वा जिस २ ग्रन्थ में ऐसे विषय का वर्णन हो वही धर्मशास्त्र है। इस से यह सिद्ध हो गया कि पिये जाने वाले वस्तुओं में जैसे मद्य का वर्णन है बहुत लोग पहिले भी मद्य पीते मांस खाते थे उन के आहार में सामिल किया देख कर उस का वर्णन आहार वा कृतान्न वर्ग में किया गया। परन्तु इस के साथ में ही यह भी सिद्ध हो गया कि मद्यपान वा मांसभक्षण को धर्मानुकूल वा धर्मविरुद्ध सिद्ध करना इस ग्रन्थ का विषय नहीं है और यदि मांसोपदेशक जी वा उन के अनुयायी कोई अल्पाशय साहस रखते हों तो सुश्रुत का ऐसा कोई प्रमाण दि-

खावें जिस में कहा हो कि मांसभक्षण करना धर्मानुकूल है । निश्चय है कि जन्मान्तर में भी उन लोगों को ऐसा प्रमाण सुश्रुत में न मिलेगा और मनु आदि के धर्मशास्त्र में सैकड़ों वचन मिलेंगे जिन में मांसभक्षण को धर्म विरुद्ध वा अधर्म कहा हो तो सिद्ध हुआ कि मांस मद्य के भक्षण पान विषय में धर्माधर्म का विवेचन करना इस ग्रन्थ का उद्देश ही नहीं तो आहार वा कृतान्नवर्ग में मांस का वर्णन आने से भी क्या हुआ। हमारा साध्य पक्ष जब यह नहीं था कि सुश्रुत के आहार वा कृतान्नवर्ग में मांस का वर्णन नहीं है किन्तु हमारा साध्य यह था और है कि मांसभक्षण धर्मानुकूल नहीं किन्तु धर्म से विरुद्ध है। तो अब शोचिये तो सही इस से हमारा उत्तर क्या हुआ अर्थात् कुछ भी नहीं । सुश्रुत के वाजीकरण प्रकरण में लिखा है कि "पिबेच्छुक्राणि वा नरः" वाजीकरण चाहता हुआ पुरुष भेड़ बकरादि के शुक्र वीर्य पीवे तो क्या मांसाहारी लोग जो आर्य बनने वा कहाने के लिये इच्छा रखते हैं वे इस को घृणित न समझेंगे ? । हमारा विचार तो यह है कि वैद्यक शास्त्र में सब प्रकार के मनुष्यों के लिये उपाय लिखे हैं म्लेच्छ जाति के लोग चाण्डालादि ऐसा काम कर सकते हैं । ऐसे कामों से ही वे अनार्य हैं । इसी प्रकार आहार प्रकरण में आसुरी प्रकृति वाले जो स्वभाव से मांसादि का आहार स्वयं करते हैं उन को गुणदोष बताये हैं कि अमुक २ के मांस में अमुक २

गुण वा दोष हैं। यदि हमारे मांसोपदेशक जी सुश्रुत के आहार प्रकरण में मांस का वर्णन देख उस को भक्ष्य धर्मानुकूल ठहराने का कुछ भी साहस रखते हों तो यही बतावें कि सुश्रुत में अभक्ष्य अन्य वस्तुओं तथा मांस का भी कहीं परिगणन है? अथवा मनुस्मृति से मांसभक्षण सिद्ध करते समय तो आपने अनेक प्राणियों का मांस अभक्ष्य मानकर शेषों का भक्ष्य ठहराने के लिये अच्छे प्रकार पंख फटफटाये क्या मनुस्मृति में जो अभक्ष्य थे वे सुश्रुत में सब भक्ष्य हो गये? मांसोपदेशक जी! सावधान रहो अब पकड़े गये हो भाग नहीं सकोगे। कपोतादि बहुत पक्षी मांसवर्ग में प्रतुद नाम अपनी चोंच से छेदन कर २ अन्य कृमि कीटादि को खाने वाले गिनाये हैं जिन को मनुस्मृति के (अ० ५ श्लोक १३। प्रतुदान् जालपादांश्च) श्लोक के अनुसार मांसभोजनविचार द्वितीय भाग के पृष्ठ ६ में मांसोपदेशक जी ने अभक्ष्य लिखा है और सुश्रुत के मांसवर्ग में उन्हीं को भक्ष्य लिखा अब पाठक महाशयो! विचारिये कि इन की कौन बात सत्य है! वा आप लोग मांसाशी लोगों से इस का उत्तर मांगिये इस का उत्तर वे जन्मान्तर में भी नहीं दे सकते। आगे मांसोपदेशक जी ने स्वयमेव एक प्रश्न बना कर कि "आयुर्वेद तो धर्मशास्त्र नहीं" इस का उत्तर स्वयमेव मांसाचार्य जी देते हैं कि-

मां०-भ्रातृवर्ग! यदि महर्षि की शासना धर्मशास्त्र नहीं तो फिर और कौन धर्मशास्त्र बन सकता है। इत्यादि।

उ०—हम पूछते हैं कि क्या व्याकरण महाभाष्य (पतञ्जलिकृत) अल्पर्षि की शासना है? क्या महाभाष्य धर्मशास्त्र है? वा नहीं, पिङ्गल सूत्र पिङ्गल ऋषि का बनाया, यास्ककृतनिरुक्त, पाणिनि कृत अष्टाध्यायी, वात्स्यायन कृत कामसूत्र, धनुर्वेद, अर्थवेद, गान्धर्ववेद इत्यादि पुस्तक क्या अल्पर्षियों के बनाये हैं ? क्या सुश्रुत ही महर्षि का बनाया है? क्या कोई नियम है कि महर्षि का बनाया जो २ हो वह २ धर्मशास्त्र अवश्य कहावे क्या किसी महर्षि ने अर्थशास्त्र कामशास्त्र मोक्षशास्त्रों को नहीं बनाया वा नहीं बना सकता ? । यदि महर्षियों के बनाये सभी धर्मशास्त्र हैं तो अर्थशास्त्र भी धर्मशास्त्र हो गया व्याकरण अष्टाध्यायी को भी धर्मशास्त्र मानो अब कोई कहे कि यह धर्मशास्त्र में लिखा है तो व्याकरण के सूत्रों में खोजा करो । वास्तव में इन की बुद्धि महापक्षपातरूप अन्धकार में दबी है इन को अच्छा मार्ग सूझना ही कठिन है (यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम्) जिस को स्वयं समझने की शक्ति नहीं उस के लिये शास्त्र का उपदेश कुछ नहीं कर सकता। जो धर्मशास्त्र नहीं वह अधर्मशास्त्र नहीं कहा जा सकता । जैसे वृष नाम धर्म का अलम् नाम समाप्ति वा नाश करने वाले का नाम मनु जी ने वृषल लिखा है यह व्याकरण वा निरुक्त विषय का है इतने से मानवधर्मशास्त्र का नाम व्याकरण वा निरुक्त नहीं होता वा रक्खा जाता । इसी प्रकार

सब शास्त्रों का कुछ २ विषय सब में आया करता है परन्तु जिस विषय का अधिकांश प्रधानता से जिस में वर्णन है वह शास्त्र उसी नाम से पुकारा जाता है। जैसे अग्नि सर्वत्र व्याप्त है तथापि पृथिवी पर्वत और जलाशयों का नाम अग्नि नहीं रक्खा जाता क्योंकि वहां २ पृथिवी और जलतत्त्व प्रधान है लोक में प्रधानांशपरक शब्दों का प्रयोग होता वहीं प्रधान वाच्य वाचकांश में शब्दों का सर्वत्र प्रचार हो रहा है। वैसे ही धर्मसम्बन्धी अंश कुछ २ सर्वत्र व्याप्त है तद्-नुसार आयुर्वेद में भी कुछ २ धर्मसम्बन्धी अंश भले ही माना जाय इस के हम प्रतिपक्षी नहीं हैं पर इतने से चिकित्सा-शास्त्र का नाम धर्मशास्त्र नहीं हो सकता क्योंकि जिस ग्रन्थ में जिस विषय का उद्देश वा अधिकार करके वर्णन किया जाता है उसी अभिप्राय से उस का नाम भी पड़ता है। जैसे योग में योग का उद्देश वा अधिकार, सांख्य में प्रकृति पुरुष के संख्या भेद का उद्देश रख कर वर्णन करने से उन २ का नाम योग सांख्यादि रक्खा गया है वैसे आयु नाम अवस्था की प्राप्ति के उद्देश से बने सुश्रुतादि का नाम आयुर्वेद रक्खा गया। उस में धर्म के व्याख्यान का कहीं नाम नहीं है। और मनुस्मृति के आरम्भ में "धर्मान्नो व-क्तुमर्हसि" वर्णों और वर्णसंकरों के धर्म पूछे गये और धर्मों के ही व्याख्यान का आरम्भ किया गया तथा बार २ यथा-वसर धर्म का नाम मनु वा भृगु ने लिया है-

धर्मकोशस्य गुप्तये । स हि धर्मार्थमुत्पन्नः ।
मूर्त्तिर्धर्मस्य शाश्वती । अस्मिन्धर्मोऽखिलेनोक्तः।
देशधर्मान् जातिधर्मान् कुलधर्मांश्च शाश्वतान् ।
पाषण्डगणधर्मांश्च शास्त्रेऽस्मिन्नुक्तवान्मनुः॥यो-
धर्मस्तन्निबोधत । वेदोऽखिलो धर्ममूलम् । सा-
क्षाद्धर्मस्यलक्षणम् । धर्मं जिज्ञासमानानाम् ॥

इत्यादि प्रकार सहस्रों वार धर्म शब्द मनुस्मृति में आया है । और स्वयं कह भी दिया है कि “इस शास्त्र में सम्पूर्ण धर्म ही कहा गया है” । और सुश्रुत ग्रन्थ में चार छः स्थानों में भी धर्म शब्द का लेख मिलना दुर्लभ है । यदि मांसोपदेशक जी को थोड़ी भी लज्जा हो वा कुछ भी अपने लेख को सत्य मानने का साहस रखते हैं तो बतावें कि आयुर्वेद में धर्म का लक्षण वा स्वरूप कहां लिखा है ? यदि न बता सकें तो अपने लेख को मिथ्या मानलें और प्रसिद्ध करदें कि हमने भूल से लिखा था । आशा है कि हमारे पाठक महाशय समझ गये होंगे कि मांसाशी उपदेशक का लेख सर्वथा मिथ्या है । यह भी ध्यान रहे कि अपने २ विषय के यथावत् कहने से वे २ सभी शास्त्र प्रशंसा के भाजन हो उन २ के कर्त्ताओं की प्रतिष्ठा कराते हैं जैसे पाणिनि आचार्य की चिकित्सांश के न कहने से वा धर्म का व्याख्यान न करने

से अप्रतिष्ठा नहीं हुई वा व्याकरण अष्टाध्यायी को धर्म-शास्त्र मानलें तब पाणिनि की प्रतिष्ठा समझी जाय सो नहीं है किन्तु व्याकरण के विषय को ठीक २ यथोचित कहने से पाणिनि आचार्य की प्रतिष्ठा है वैसे ही धर्म का पक्षह लगाने वा न लगाने से धन्वन्तरि जी की प्रतिष्ठा अप्रतिष्ठा भी नहीं किन्तु आयुर्वेदीय विषय के यथोचित कहने से ही उन की यथोचित प्रशंसा चली जाती है। इस से सिद्ध हो गया कि आयुर्वेद धर्मशास्त्र नहीं यह मांसोपदेशक का केवल स्वप्न का सा बड़बड़ानामात्र है। आगे मांसोपदेशक जी ने श्रीस्वामी दयानन्दसरस्वती जी महाराज का संस्कारविधि जो द्वितीयावृत्ति में छपा है प्रमाण दिया है-

मां०—"इसलिये गर्भाधानादि संस्कारों के करने में वैद्यकशास्त्र का आश्रय विशेष लेना चाहिये। अब देखिये सुश्रुतकार परम विद्वान् कि जिन का प्रमाण सब विद्वान् मानते हैं" यह लेख संस्कार विधि का प्रमाण में देकर उपदेशक जी ने लिखा है कि गर्भाधान विधि आयुर्वेद नाम सुश्रुत और उपनिषद् में लिखे अनुसार करना चाहिये॥

उ०-हम पूछते हैं कि स्वामी जी के इस लेख से उपदेशक जी का पक्ष क्या सिद्ध हो गया ?। स्वामी जी ने लिखा है वैसा हम स्वयं भी मानते हैं कि धन्वन्तरि जी वास्तव में बड़े विद्वान् पूज्य थे यह उन के ग्रन्थ को जो कोई साक्षर देखेगा वह निस्सन्देह उन को परम विद्वान् कहे

और मानेगा । पर इतने से उन की विद्वत्ता आयुर्वेद के व्याख्यान में ही मानी जायगी किन्तु धर्मविषय में नहीं क्योंकि न धर्म का व्याख्यान उन्हों ने किया न यह ग्रन्थ धर्मशास्त्र है । यदि पाणिनि महर्षि को व्याकरण के विषय में कोई परम विद्वान् माने तो धर्म के व्याख्यान विषय में भी उन की विद्वत्ता मानना आवश्यक है ? वा धर्मविषय का व्याख्यान उन्होंने नहीं किया इस से धर्मविषय में अष्टाध्यायी का प्रमाण कोई न माने तो व्याकरण विषय के व्याख्यान से हुई प्रतिष्ठा वा विद्वत्ता पाणिनि आचार्य की क्या नष्ट हो सकती है ? कदापि नहीं । किसी अंगरेज़ी के प्रबल विद्वान् की प्रतिष्ठा जो उस भाषा में अधिक जानकारी होने से हुई हो वह क्या संस्कृत न जानने से मूर्ख अविद्वान्-वा निन्दित अप्रतिष्ठित हो सकता है ? ऐसे ही धन्वन्तरि जी की प्रतिष्ठा प्रशंसा आयुर्वेद के व्याख्यान से हुई है धर्म-विषय में नहीं । आयुर्वेद का काम भी मनुष्यों को बहुधा पड़ता है उस के यथार्थ जानने से सुख भी मिल सकता है इसी से वह परोपकारक शास्त्र है । आयु का सम्बन्ध शरीर के साथ है शरीर का अच्छा हृष्ट पुष्ट नीरोग रखना ठीक २ रक्षा करना इस से शरीर सम्बन्धी सुख और अवस्था बढ़ती है । परन्तु सुख दुःख का विशेष सम्बन्ध मन और आत्मा के साथ है । मानस और आत्मिक सुख की मुख्य प्राप्ति धर्म के आधीन है इस से अन्तरङ्ग होने के कारण आयुर्वेद की

अपेक्षा धर्मशास्त्र बड़ा है । धर्मानुकूल मन और आत्मा की शुद्धि वा सुधार हुए विना शरीर की भी यथोचित रक्षा नहीं हो सकती क्योंकि आत्मा वा मन में जैसी विचारशक्ति होगी वैसा ही शरीर का भी प्रबन्ध कर सकता है अच्छी समझ होने से ही सब काम अच्छे हो सकते हैं । और गर्भाधानादि संस्कारों के करने में आयुर्वेद का आश्रय अवश्य लेना चाहिये सो ठीक है पर इस कथन से यह कैसे सिद्ध हो गया ? कि मांस खाना सामान्य दशा में अच्छा है वा गर्भाधान में खाना आवश्यक है । सुश्रुत में गर्भाधान का विषय शारीरस्थान में है । सुश्रुत शारीरस्थान के शुक्रशोणितशुद्धिनामक द्वितीयाध्याय में गर्भाधान के पूर्व स्त्री पुरुषों के लिये भोजनार्थ विचार लिखा है कि-

ततोऽपराह्णे पुमान् मासं ब्रह्मचारी सर्पिःस्निग्धः सर्पिःक्षीराभ्यां शाल्योदनं भुक्त्वा मासं ब्रह्मचारिणीं तैलस्निग्धां तैलमाषोत्तराहारां नारीमुपेयाद्रात्रौ सामादिभिर्विश्वास्य विकल्प्यैवं चतुर्थ्यां षष्ठ्यामष्टम्यां दशम्यां द्वादश्यां चोपेयादिति पुत्रकामः ॥

अर्थः-तदनन्तर अर्थात् ऋतु समय में तीन दिन यथोचित आचार विचार रख के स्नान कर शुद्ध हुई स्त्री शृङ्गारादि शुद्धि कर के सब से पहिले अपने पति का दर्शन करे तत्पश्चात्

ऋतुदर्शन से चौथे छठे आठवें दशमे अथवा बारहवें दिन दोपहर पीछे महीने भर पहिले से ब्रह्मचारी रहा पुरुष घी दूध मीठा मिला के शालिनामक चावलों का भात वा खीर खा के रात्रि के समय शरीर में घी लगा कर महिने भर पहिले से ब्रह्मचारिणी रही और भोजन के अन्त में जिस ने उसी दिन तेल और उड़द के संयोग से बने बड़ा वा कचौरी आदि खाये हों और शरीर में तेल लगाया हो ऐसी स्त्री के पास गर्भाधानार्थ आवे और गर्भाधान से पहिले शुद्ध विचार के साथ शान्ति आदि धर्म का यथोचित उपदेश करे ईश्वर भक्ति आदि की ओर चित्त लगावे । अब उपदेशक जी वा मांसाशी लोग बतावें कि सुश्रुत के गर्भाधान प्रसंग में मांसभक्षण कहां लिखा है ? मांसभक्षण की आवश्यकता तो दूर रही किन्तु मांस का नाम तक भी नहीं आया । तब हम पूछते हैं कि मांसोपदेशक जी क्यों कूदते फांदते थे ?। स्वामी जी महाराज ने सुश्रुत का आश्रय लेना लिखा सो तो उन महात्मा की आर्यों पर कृपादृष्टि ठीक है ऐसा शुद्ध विचार गर्भाधानार्थ सुश्रुत से भिन्न कहां मिल सकता है ? । पाठक महाशयो ! शोचिये तो सही सुश्रुतकार ने गर्भाधान के समय कैसा शुद्ध सात्विक आहार लिखा है ? और मांस मद्यादि निकृष्ट अभक्ष्य वस्तुओं का ऐसे शुभ समय में नाम भी नहीं लिया । तो सिद्ध होगया कि गर्भाधानादि संस्कारों में आयुर्वेद की सम्मति वा वि-

चार देखना परमावश्यक है और मांसोपदेशक का दुर्भाव सर्वथा खण्डित हो गया।

मां०-प्रथमावृत्ति संस्कारविधि में श्रीस्वामी जी ने बृहदारण्यकोपनिषद् ८ अध्याय ४ ब्राह्मण १८ श्रुति का तथा शतपथब्राह्मण के चौदह १४ वें काण्ड के नवें अध्याय का प्रमाण दिया है। देखो प्रथमावृत्ति संस्कारविधि पृष्ठ ११ में लिखा है कि-

अथ य इच्छेत्पुत्रो मे पण्डितो विजिगीथः००० जायेत सर्वान् वेदाननुब्रवीत सर्वमायुरियादिति मांसौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयातामीश्वरौ जनयितवा औक्ष्णेन वार्षभेण वा॥

इस श्रुति का जो स्वामी जी ने अर्थ किया है वह यह है कि-जो चाहे कि मेरा पुत्र सदसद्विवेकी आदि हो वह मांसयुक्त भात को पका के पूर्वोक्त घृत युक्त खाये तो वैसे पुत्र होने का सम्भव है॥

उ०-यह सब आर्य लोगों को अच्छे प्रकार विदित है कि स्वामी जी महाराज ने प्रथम संस्कारविधि तथा पहिला सत्यार्थ प्रकाश शोध दिया पहिले बनाये पुस्तकों में स्वयमेव सम्हाल दिया तो स्पष्ट है कि उस लेख को वा उन प्रमाणों को वे अच्छा ठीक नहीं मानते थे यदि वे इन प्रमाणों को अच्छा यथावत् पूर्ण उपयोगी धर्मानुकूल समझते तो संस्कारविधि की द्वितीयावृत्ति में निकाल कदापि नहीं देते। यद्यपि

इस विचार के अनुसार पुरानी संस्कारविधि में लिखे शतपथ ब्राह्मण के प्रमाण की विशेष व्यवस्था करने और उत्तर देने का विशेष भार हम पर नहीं है तथापि कोई यही कल्पना करे कि स्वामी जी ने उन को अच्छा ही मान कर लिखा हो तो क्या उत्तर होगा अर्थात् थोड़ी देर को मानलो [फर्ज़करलो] कि शतपथ ब्राह्मण बड़ा प्रतिष्ठित वेद के साथ समता रखने वाला पुस्तक है इसी से अनेक लोगों ने इन ब्राह्मण पुस्तकों को वेद माना है। ऐसे पुस्तक के लेख वा प्रमाण को स्वामी जी महाराज भी सहसा अयुक्त वा वेदविरुद्ध नहीं कह सकते थे। वास्तव में यह बात ठीक भी है कि ब्राह्मण पुस्तक वेद की शैली के साथ वेद के विषयों का व्याख्यान करने में वेद के साथ बड़ा अन्तरङ्ग सम्बन्ध रखते हैं। और वेद के साथ अति निकट सम्बन्ध रखने से ही ये ग्रन्थ अन्यस्मृत्यादि ग्रन्थों की अपेक्षा अधिक मान्य अवश्य होने चाहिये। इसी अभिप्राय से हम शतपथ ब्राह्मण के पूर्वोक्त प्रमाण का उत्तर लिखते हैं। परन्तु हमारे पाठक महाशय यह ध्यान अवश्य रक्खें कि हमारा यह उत्तर इसी द्वितीय पक्ष के लिये होगा किन्तु प्रथम पक्ष में यह स्पष्ट सिद्ध है कि स्वामी जी महाराज के मन में कुछ ग्लानि वा उदासीनता अवश्य थी इसी से उन्होंने इस प्रमाण को संस्कार विधि का संशोधन करते समय निकाल दिया। क्योंकि वे महात्मा मूल वेद को ही स्वतःप्रमाण मानते

थे और ब्राह्मण ग्रन्थों को परतःप्रमाण माना था इस से ग्लानि होने पर उसे छोड़ दिया और लोक में यह प्रसिद्ध भी है कि जिस को जिस वस्तु प्रमाण वा मनुष्यादि से ग्लानि वा उदासीनता होती है वही उस को छोड़ता है। इसी लिये संसारी पदार्थों से जब तक अनुराग रहता है तब तक कोई उन का परित्याग कर विरक्त नहीं होता इस से सिद्ध है कि स्वामी जी महाराज को उस प्रमाण से उदासीनता अवश्य हुई थी।

और रहा संस्कारविधि की द्वितीयावृत्ति में "उपनिषदि गर्भलम्भनम्" इस आश्वलायनीय सूत्र का लिखना सो इस से यह अभिप्राय निकालना कि स्वामीजी महाराज ने पहिली संस्कारविधि में लिखे प्रमाण को सूचित किया है यह केवल अज्ञान है। जब उपनिषद् ग्रन्थ अनेक हैं और उन में भिन्न २ स्थलों में यथावसर गर्भविषयक भी व्याख्यान आया ही है तो यह कैसे सिद्ध होगया कि इस आश्वलायन के कथन से उसी उपनिषद् का वही वचन लिया जाय इस के लिये हमारे उपदेशक जी के पास कोई ऐसा बड़ा प्रमाण वा युक्ति नहीं है। वास्तव में आश्वलायन सूत्र का अभिप्राय पुंसवन प्रकरण से है क्योंकि "उपनिषदि गर्भलम्भनं पुंसवनमनवलोभनंच" इतना बड़ा आश्वलायन का सूत्र है। इस का स्पष्टार्थ यही है कि उपनिषद् में ऐसा विचार लिखा है कि जिस से गर्भस्थिति निर्विकल्प हो और पुंस् नाम पुत्र ही उत्पन्न हो

किन्तु कन्या न हो और उस पुत्र का अवलोभन नाश वा मृत्यु भी न हो बना भी रहे । इस से उपनिषद् के प्रमाण से आश्वलायन जी ने तीन बातें दिखायी हैं १-गर्भाधान व्यर्थ न जावे गर्भस्थिति अवश्य हो । २-पुत्र ही हो । ३-वह पुत्र दीर्घायु भी हो बना रहे मर न जावे । यही आशय वहां टीकाकार ने भी लिखा है और यही स्वामी जी महाराज का प्रयोजन संस्कार विधि में लिखने से है । गर्भाधान के समय मांस खाना चाहिये यह अभिप्राय न सूत्र में न उस के भाष्य में और न स्वामी जी महाराज का है।

हम पूछते हैं कि मांसोपदेशक जी ने यह क्यों न मान लिया कि बृहदारण्यक अ० ८ ब्रा० ४ कण्डिका ११ । १४ । १५ । १६ । १७ । में जो विचार लिखा है वही "उपनिषदि गर्भलम्भनम्" का आशय स्वामी जी को जताना अभीष्ट था । केवल १८ अठारहवीं कण्डिका में मांस का नाम आया वही स्वामी जी को जताना अभीष्ट था यह किस प्रमाण से सिद्ध हो गया ? । इस से इन का स्पष्ट ही पक्षपात सिद्ध है । अथवा इन को मांस के विना अन्य कोई अच्छी बात सूझती ही नहीं होगी । इस से सिद्ध है कि स्वामी जी का अभिप्राय वही है जो पूर्व आश्वलायन सूत्र का अभिप्राय हम ने लिख दिया । यदि उसी प्रमाण को स्वामी जी महाराज "उपनिषदि गर्भलम्भनम्०" इस आश्वलायनीय सूत्र से सूचित करना मन में रखते होते तो

शोचिये कि वे द्वितीय संस्कारविधि के संशोधनावसर में उस प्रमाण को छोड़ते वा निकालते ही क्यों ! इस लिये स्वामी जी को उस प्रमाण से ग्लानि हुई थी यह उन के इङ्गित चेष्टित से स्पष्ट ही सिद्ध है और उस वाक्य "मांसौदनं पाचयित्वा०" का स्वामी जी महाराज ने खण्डन भी नहीं किया न कोई व्यवस्था लगायी इस से यह भी झलकता है कि प्रतिष्ठित ग्रन्थ की बात को उन्हों ने सहसा बुरा कहना महत्त्व के अनुसार अच्छा नहीं समझा । यदि उन के समक्ष में मांस भक्ष्याभक्ष्य का आन्दोलन उपस्थित हो जाता तो वे अवश्य इत्यादि वाक्यों की कुछ व्यवस्था लगाते । अब हम द्वितीय पक्ष के अनुसार शतपथब्राह्मण के उस वाक्य की कुछ व्यवस्था लिखते हैं आशा है कि हमारे पाठक तथा मांसोपदेशक वा मांसाहारी लोग विशेष ध्यान देकर शोचें देखेंगे ।

मांस भोजन विचार के तृतीय भाग के खण्डन में जो वेद मन्त्रों पर हम ने लिखा है कि मांस शब्द का सामान्यार्थ खाये पिये वा उपयोग में लाए हुए वस्तुओं का तीसरा परिणाम है । अर्थात् खाने पीने शब्दों का व्यवहार वृक्ष वनस्पति घास आदि में भी होता वे भी खाते पीते हैं इसी से खात डालने का प्रयोजन खाद्य से है कि जो वस्तु खात के नाम से आलू गोभी गेहूं जौ आदि में डाला जाता है उस को वे खाते हैं । उस खाद्य से जो पहिला परिणाम वा विकार बनता वह रस धातु और द्वितीय परिणाम का नाम रक्त वा रुधिर तथा उस से जो तीसरा परिणाम बनता है

उस का नाम मांस है । यह बात सुश्रुत के रक्त वर्णनीयाध्याय में स्पष्ट लिखी भी है कि-

उपयुक्तस्याहारस्य सम्यक् परिणतस्य यस्तेजोभूतः सारः परमसूक्ष्मः स रस इत्युच्यते तथा-रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते ॥ इति ।

इस प्रकार वेद के सिद्धान्तानुसार वृक्ष, फल, मूल, कन्द, वनस्पत्यादि में भी इसी प्रकार खाये पीये का प्रथम परिणाम रस, द्वितीय शोणित वा रक्त और तीसरे परिणाम वा विकार का नाम मांस है जिसको लोक में गूदा कहते हैं । और मनुष्य पशु पक्ष्यादि के शरीरों का भी गूदा रूप भाग ही वास्तव में मांस कहाता है । लोक वा लौकिक ग्रन्थों में मांसादि शब्द विशेष अर्थों में रूढि मान लिये गये वा लोक परम्परा से हो गये पर वेद में उन का सामान्यार्थ मीमांसादि शास्त्रों के सिद्धान्तानुसार अब भी माना ही जाता है । शतपथादि ब्राह्मण वेदों के अत्यन्तसमीपी हैं इस से उन में भी सामान्य यौगिकार्थ लेना उचित ही है पाणिनि आदि के व्याकरणादि में वेद में कहे कार्य वेदवत् होने से ब्राह्मण ग्रन्थों में भी दीखते ही हैं इसी के अनुसार "मांसौदनं पाचयित्वा" का यही अर्थ ठीक है कि गर्भाधान के समय फलादि के उत्तम गूदा रूप तृतीय परिणाम—मांस और भात को मिला के घी डाल कर खावे । जैसे (मांसौदनं०) वाक्य के सामान्य मांस में से मांसोपदेशक जी को मनुष्य का मांस गोमांस

वहां न लेने के लिये कोई प्रमाण वा युक्ति रचने ही पड़ेगी उसी युक्ति प्रमाण से हम पशु पक्षी आदि चर वा जङ्गम प्राणिमात्र के शरीरों का तृतीय परिणाम हिंसा की अधिकता मान कर छोड़ देंगे। क्योंकि "मांसौदनं०" कहने से चेतन प्राणिमात्र के मांस को मांसाहारी लोग भी नहीं ले सकते ऐसा करें तो मनुष्य गौ, गर्दभ आदि सभी का मांस उन को लेने पड़े इस से जैसे वे लोग किन्हीं का मांस छोड़ेंगे वैसे हम चर मात्र का छोड़ते हैं उन के पक्ष में हिंसा दोष भी रहेगा और वेद का सामान्यार्थ मानने का सिद्धान्त भी न बनेगा। तथा हमारे पक्ष में हिंसा दोष सर्वथा बच जायगा और वेद के सामान्य यौगिकार्थ विषयक मीमांसादि का सिद्धान्त ठीक रहेगा। इस से मांस का यही अर्थ ठीक है।

अब रहा "औक्षणेन वार्षभेण वा" इस का विचार सो जब वैद्यक ग्रन्थों में ऋषभ वृषभ वा वृष तथा उक्षा ये ओषधियों के नाम भी आते हैं और लोक में ये बैल के भी नाम हैं। वास्तव में शब्द का तात्पर्यार्थ सर्वत्र एक ही है अर्थात् इन शब्दोंका मुख्य सामान्यार्थ यह है कि जिन २ वस्तुओं में वाजीकरण की विशेष शक्ति है उन का नाम वृष, वृषभ, ऋषभ, उक्षा आदि है। परन्तु बलीवर्द जो बैल का नाम है उस का वाजीकरण अर्थ नहीं है। चिकित्सा वा आयुर्वेद सम्बन्धी अन्य ग्रन्थ इस लेख को लिखने के समय हमारे पास

नहीं थे केवल "मदनपाल निघण्टु" जो अति प्रसिद्ध पुस्तक है उस से कुछ लिखते हैं—"जीवक ऋषभक" ओषधि के नामों में ऋषभ, और वृष ये नाम हैं इन में वीर्य और बल को बढ़ाना [जो वाजीकरण कहाता है] प्रधान गुण है। अश्वगन्धा—जिस को असगन्ध कहते हैं उस का भी नाम वृषा और वृषभा है। तथा बांसा ओषधि का नाम भी वृष और वृषभ है (और उक्षा तथा वृषभ में इतना भेद है कि जिस की चढ़ती दशा वा तरुणावस्था कहातो वह उक्षा और परिपक्व दशा का नाम वृष, वृषभादि है। सो जिन ओषधियों का नाम ऊपर लिखा है उन्हीं की चढ़ती दशा उक्षा और परिपक्व दशा वृषभ वा ऋषभ है। गर्भाधान के प्रसङ्ग में ऐसी बलवीर्यवर्द्धक ओषधियों का विशेष सेवन करना भी आवश्यक और उचित ही है। और उक्षा तथा वृषभ का बैल अर्थ भी लोक में प्रधान ही रहेगा पर हिंसा दोष के अवसर में हिंसा को बचाने के लिये उन का ग्रहण भी नहीं करना चाहिये। तथा द्वितीय विचार यह भी अवश्य शोचनीय है कि आयुर्वेदीय ग्रन्थों में पुष्टि, वाजीकरण अर्थात् बलवीर्यवर्द्धक ओषधियों का जहां २ वर्णन लिखा गया है वहां २ मांस का नाम भी नहीं लिया गया। अन्य ओषधियों के सहस्रों योग लिखे हैं इस से भी स्पष्ट सिद्ध है कि अन्य ओषधियों के समान वा उन से अधिक वाजीकरण गुण मांस में उन लोगों ने नहीं माना था इस से भी गर्भाधान के प्रक-

रण में उक्षवृषभादि शब्दों से उन्हीं ओषधियों का ग्रहण करना चाहिये क्योंकि वे ओषधियां ही वाजीकरण में प्रधान हैं और उनका ग्रहण वैद्यक ग्रन्थों में लिया भी गया ही है तो निर्विकल्प सिद्ध होगया कि बृहदारण्यक के उन वाक्यों का यही अर्थ है और मांसोपदेशक जी का अर्थ वा विचार सर्वथा युक्ति प्रमाण शून्य है।

अब इन के प्रथम भाग पर केवल थोड़ासा विचार और प्रकट करना है-सुश्रुत मांसवर्ग के आरम्भ में मांसोपदेशक जीने अपने प्रथम भाग के पृष्ठ १३ में यों लिखा है-

अत ऊर्ध्वं मांसवर्गाननुव्यख्यास्यामः—तद्यथा जलेशया आनूपा ग्राम्याः क्रव्यभुज एकशफा जाङ्गलाश्चेतिषण्मांसवर्गास्तेषांवर्गाणामुत्तरोत्तरं प्रधानतमाः ॥ सुश्रु० अ० ॥ ४६ ॥

अर्थः-इस से आगे मांस वर्गों का व्याख्यान करेंगे। जल के भीतर रहने वाले, दोनों ओर जल हो ऐसे जल समीपी स्थल में रहने वाले, ग्रामवासी, कच्चा मांस खाने वाले, जुड़े खुरों वाले घोड़ा आदि और जङ्गल में रहने वाले हरिण शृगाल आदि ये सब छः भागों में विभक्त मांस के छः समुदाय कहाते हैं इन ६ हुं में पिछले २ की अपेक्षा से अगले २ समुदाय का मांस उत्तम है। यह तो सुश्रुत का अक्षरार्थ रहा। अब हम न्यायशील पाठक महाशयों को सूचित कर

ध्यान दिलाना चाहते हैं कि—इन छः वर्गों में पहिला वर्ग जलेशय नाम जल में रहने वाले प्राणी हैं जिन में भी मछली प्रधान कर खाई जाती है। यहां मांसाचार्य जी का यह अभिप्राय तो अवश्य ही है कि सुश्रुत के प्रमाण से ये सब भक्ष्य हैं परन्तु मनुस्मृति में यद्यपि "(मत्स्यादः सर्वमांसादस्तस्मान्मत्स्यान्विवर्जयेत्) मछली खाने वाला सब मनुष्यादि के मांस का भी खाने वाला है इस से मछलियों को न खावे।" यह श्लोक मांसाचार्य जी ने चुरा लिया अर्थात् पञ्चम अध्याय के अन्य श्लोक भक्ष्याभक्ष्य सम्बन्धी लिखते समय अपने द्वितीय भाग में इस को नहीं लिखा तथापि मनुस्मृति पुस्तक में तो विद्यमान ही है। इस श्लोक से स्पष्ट मत्स्यभक्षण की निन्दा है और यहां सुश्रुत से सभी जलचरों का भक्ष्य होना मांसोपदेशक जी मानते हैं तो इन दोनों में क्या सत्य है! एक को मिथ्या मानना पड़ेगा क्योंकि इन के मत में दोनों ही धर्मशास्त्र हैं। सो आशा है कि हमारे पाठक उन लोगों को ठीक उत्तर देने के लिये बाधित करेंगे।

सुश्रुत के मांसवर्गों में तीसरा वर्ग ग्राम के रहने वाले गाय, भैंस, भेड़ बकरी आदि हैं जिन सब को सुश्रुत धर्म शास्त्र के प्रमाण से भक्ष्य ठहराने का उद्योग मांसाचार्यजी ने किया है। और मनुस्मृति अ० ५। श्लोक ११ को मांसभोजन विचार द्वितीय भाग के पृष्ठ ५ में लिखा है "तथा ग्राम

निवासिनः॰" (ग्राम के रहने वाले पशु पक्षियों को न खावे) मांसाचार्य जी के मत में सुश्रुत बड़ा धर्मशास्त्र है क्योंकि इस में मांस खाने का नाम अधिक है और मनु को कदाचित् छोटा धर्मशास्त्र मानते हों तथापि इन को लज्जा नहीं आती कि मनु के प्रमाण से जिन ग्रामनिवासियों को अभक्ष्य कहते उन्हीं को सुश्रुत के प्रमाण से प्रथमभाग में भक्ष्य ठहराते हैं तब कहिये मांसाचार्य जी ! आप अपने प्रथम भाग के लेख को सत्य ठहरावेंगे वा द्वितीय के को. एक आप को अवश्य मिथ्या कहने मानने पड़ेगा । स्मरण रक्खो अब दो में एकको मिथ्या कहे विना छूटोगे नहीं ? ।

इन्हीं मांस वर्गों में चौथे क्रव्यभुग—कच्चामांस खाने वाले गीध, चील्ह आदि पक्षी हैं जिन को यहां सुश्रुत के प्रमाण से मांसाचार्य जी ने भक्ष्य कहा और माना तथा भाग २ के पृ० ५ में मनु० अ० ५ के श्लोक ११ "क्रव्यादान् शकुनीन्सर्वान्०" से अभक्ष्य कहा वा माना है तो कहिये कौनसा लेख इन का सत्य मानाजाय ? । तथा इन मांसवर्गों में पांचवें वर्ग के एकशफ—एक खुर वाले घोड़ा गधादि को सुश्रुत से मांसोपदेशक जी ने भक्ष्य माना और मनु० अ० ५ श्लोक ११ तथा मांसभोज० भाग २ पृ० ५ में "एकशफान्०" लिख कर उन्हीं एक खुर वाले घोड़ा गधा आदि को अभक्ष्य लिखा है । क्या द्वितीय भाग लिखते समय ये रोगादि के कारण थे और प्रथम भाग लिखते समय रोगादि को हटाने

वाले ये ही होगये ? । सो पाठक महाशयो ! इन लोगों से बल देकर पूछिये उत्तर मांगिये कि इन परस्पर विरुद्ध दो लेखों में तुम्हारा कौनसा लेख सत्य है ! बताओ । एक को अपने मुख से मिथ्या कहो । तथा प्रथम भाग के २१ पृष्ठ में ग्राम कुक्कुट को मांसाचार्यजी ने भक्ष्य माना और अच्छी प्रशंसा की है तथा भाग २ के पृष्ठ ५ में मनु अ० ५ के १२ श्लोक को लिख कर ग्राम के मुर्गा को अभक्ष्य कहा है । तथा भाग एक के २१ पृष्ठ में कोयष्टिनामक पक्षी को सुश्रुत के प्रमाण से भक्ष्य और उसी को भाग २ के ६ पृष्ठ में अभक्ष्य कहा है । चोंच से छेद २ पीड़ित कर कीड़ों को खाने वाले परेवा कबूतर गलगलिया शुक, सारिकादि को सुश्रुतकार ने प्रतुद कहा और माना है जिनको मांसाचार्य ने प्रथम भाग के पृष्ठ २१ में लिखा है और भाग २ के पृष्ठ ६ में मनु अ० ५ के १३ वें श्लोक (प्रतुदान्०) इत्यादि को लिख कर अभक्ष्य ठहराया है । तथा शुक और सारिका को पृष्ठ ५ में मनु अ० ५ के श्लोक १२ में अभक्ष्य कहा और भाग १ के पृष्ठ १२ में सुश्रुत के प्रमाण से उन्हीं दोनों को भक्ष्य कहा है । भाग २ के पृष्ठ ५ में जल में गोता लगाने वाले प्लवनामक पक्षियों को मनु के प्रमाण से अभक्ष्य कहा है और प्रथम भागके ३३ पृष्ठ में सुश्रुत के प्रमाण से उसी प्लवनामक पक्षी जाति को भक्ष्य माना है । तथा हंस, चक्रवाक और सारस को द्वितीय भाग के ५ पृष्ठ में मनु के प्रमाण से मांसाचार्य ने भक्ष्य माना और इन्हीं तीनों को प्रथम भाग के पृष्ठ ३८

में के सुश्रुत प्रमाण से भक्ष्य लिखा है ऐसे सैकड़ों दोष प्रमाद वा परस्पर विरोध इन के लेख में विद्यमान हैं यहां उदाहरण (नमूना) मात्र लिख दिये वा दिखा दिये हैं। अब कहिये मांसोपदेशक जी ! क्या उत्तर दोगे अपने प्रथम भागों पर हरताल फेरोगे वा द्वितीय को मिथ्या कहोगे। स्मरण रक्खो अब तुम को दो में एक लेख मिथ्या अवश्य मानना पड़ेगा छूटोगे नहीं ठीक २ पकड़े गये हो ! पाठक महाशयो ध्यान देना कि सुश्रुत और मनुस्मृति से प्रथम द्वितीय भाग में मांस सिद्ध करने में इनका लेख कैसा २ स्पष्ट ही परस्पर विरुद्ध है। और हमारे मत में इन में से कोई दोष इस लिये नहीं है कि सुश्रुत को हम विधायक धर्मशास्त्र नहीं मानते किन्तु सब पदार्थों के गुण दोषों का वर्णन करना उस ग्रन्थ का प्रधान काम है और मनु के उन श्लोकों की व्यवस्था इन के द्वितीय भाग के खण्डन में लिखी गयी है। आशा है कि इन बातों का उत्तर हमारे फलाहारी पाठक लोग मांसाहारियों से मांगेंगे।

इस से आगे प्रथम भाग के पृष्ठ ६४ से लेकर लिखा है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने गर्भाधानादि विधि सुश्रुत के अनुसार करनी लिखी है। इस का उत्तर हम पूर्व दे चुके हैं। इन मांसाचार्य जी को गर्भाधान के समय मांस खाने का विधान कहीं सुश्रुत में नहीं मिला तो गर्भस्थिति के समय दौहृद आदि समय पर मांस खाने का प्रमाण लिखा है कि-

गोधामांसाशने पुत्रं सुषुप्सुं धारणात्मकम् ।
वराहमांसात्स्वप्नालुं शूरं संजनयेत्सुतम् ॥

सुश्रुत शारीरस्थान अ० ३ । गर्भिणी को गोह के तथा सुअर के मांस खाने की इच्छा हो और दिया जाय तो अधिक सोने वाला धारणाशील शूर वीर पुत्र उस के होवे ।

उ०—प्रथम तो यहां मांस की कोई प्रशंसा विशेष नहीं है द्वितीय शोचनीय यह है कि मांसाहारिणी स्त्री को ऐसी इच्छा होना सम्भव है । जो जिस काम को कभी नहीं करता उसको उसकी इच्छा भी नहीं हो सकती । सब इच्छा गुप्त वा प्रकट प्रत्यभिज्ञान पूर्व के स्मरण से होती हैं । यदि गर्भस्थ की इच्छासे गर्भिणीको इच्छा होतो वह गर्भस्थ जीवात्मा पूर्व जन्म का मांसाहारी अवश्य होगा । जैसे मद्यपानी अफीमी आदि को वह २ वस्तु न मिलने से उन को महा कष्ट वा मरणान्तक होजाता है वैसे मांस की इच्छा उत्पन्न हो और मांस न मिले तो गर्भस्थ को भी हानि पहुंचे यह सम्भव है तथापि इतने से मांसभक्षण धर्म वा कर्त्तव्य कोटि में नहीं आसकता । ऐसा हो तब तो मद्य मैथुन भंग अफीम आदि भी उन २ व्यसनियों के लिये धर्मानुकूल मानने पड़ें तथा चोरी करने का अवसर मिले बिना चोर को भी हानि और उस को कष्ट होता है तो चौर्यकर्म भी कर्त्तव्य में ठहराने पड़ेगा । क्या मांसाचार्य जी सब व्यसनों को कर्त्तव्य ठहरा सकेंगे ? । तथा हम पूछते हैं कि सुश्रुत के शारीरस्थान के उसी तीसरे अध्याय में यह भी लिखा है कि "गवां मांसे च बलिनम्०" गौ का मांसखाने की इच्छा गर्भिणी को हो और गोमांसखाने को मिले तो पुत्र बलवान् होगा । इस प्रमा-

ण को मांसाचार्य जी ने क्यों छोड़ दिया ? । क्या इस को मांसोपदेशक जी प्रक्षिप्त मानेंगे ? जब कि सुश्रुत को मांसभक्षण करने के लिये धर्मशास्त्र मानने का उद्योग करते हैं तो धर्मशास्त्र में ऐसी बात देख डरे होंगे कि हम को लोग अत्यन्त बुरा कहेंगे । और हमारे मत में तो यह दोष इस कारण नहीं है कि हम सुश्रुत को धर्मशास्त्र नहीं मानते किन्तु ईसाई मुसलमान आदि से भी हमारे समान ही सुश्रुत का सम्बन्ध है । जो स्त्री वर्त्तमान जन्म में गोमांस खाती रही है वा जिस गर्भस्थ बालक ने पूर्व जन्म में गोमांस खाया है उन्हीं को गर्भावस्था में भी उस मांस के खाने की इच्छा होसकती है । उन्हीं के लिये सुश्रुत का कथन सिद्धानुवाद है विधिवाक्य नहीं है ।

इसी प्रकार गर्भावस्था के भिन्न २ महीनों में गर्भिणी के भोजनों में मांस का नाम जहां २ आया है वहां २ भी मांसाहारिणी स्त्रियों के लिये दिखाया गया है सब के लिये नहीं और मांस के प्रसंग में सुश्रुतकारने धर्म कहीं नहीं लिखा कि सामान्य कर वा विशेष कर किस को किसी का मांसखाना धर्म है । इस से भी सुश्रुत का धर्म से सम्बन्ध न होना सिद्ध ही है । इस प्रकार सुश्रुत के धर्मशास्त्र न होने, स्वामी जी महाराज का प्रमाण देना मिथ्या होने तथा भाग के मनु के प्रमाणों से द्वितीय लिखे लेख से अधिकांश विरुद्ध होने आदि के कारण इन का प्रथम भाग का सब लेख मिथ्या सिद्ध हो गया । आशा है कि पाठकों को इतना ही लिख देने से मांसपार्टी वालों का लेख अच्छे प्रकार तुच्छ प्रतीत होजायगा ॥

इति ॥

पुस्तकों की सूची ॥

यमयमीसूक्तम् =) प्रबन्धार्कोदय ।-) नया छपा है आर्य्य धर्म की शिक्षा के साथ मिडिलक्लाश की परीक्षा देने वाले छात्रों को उत्तम २ प्रबन्ध लिखना सिखाता है ॥ आयुर्वेद-शब्दार्णव (कोष) ॥=) मनुस्मृतिभाष्य की भूमिका १॥) छा-कव्यय =)॥ पुस्तक रायल पुष्ट कागज़ में ३६४ पेज का छपा है ॥ ईश उपनि० भाषा वा संस्कृत भाष्य ≡) केन ।) कठ ।॥) प्रश्न ॥=) मुण्डक ।॥) माण्डूक्य ≡) तैत्तिरीय ॥।) इन ७ उप-निषदों पर सरल संस्कृत तथा देवनागरी भाषा में टीका लिखी गयी है कि जो कोई एकबार भी इस को नमूना (उदाहरण) मात्र देखता है उस का चित्त अवश्य गढ़ जाता है । सातों उपनिषद् इकट्ठे लेने वालों को ३) ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ये छः उपनिषद् छोटे गुटकाकार में ब-हुत शुद्ध मूल भी छपे हैं मूल्य =) तैत्तिरीय, ऐतरेय, श्वेता-श्वतर, और मैत्र्युपनिषद् ये चार उपनिषद् द्वितीय गुटका में ≡) गणरत्नमहोदधिः १॥) आर्य्यसिद्धान्त ७ भाग ८४ अङ्क एक साथ लेने पर ४।=) और फुटकर लेने पर प्रति भाग ।॥) ऐतिहासिक निरीक्षण =) ऋगादिभा०भूमिकेन्दूपरागे प्रथ-मोंशः -)॥ तथा द्वितीयोंशः -)॥। विवाहव्यवस्था =) ती-र्थविषय (गङ्गादि तीर्थ क्या हैं) -)॥ द्वैताद्वैतसंवाद (जीव-ब्रह्म पर) -)॥ सद्विचारनिर्णय -) ब्राह्ममतपरीक्षा =) अष्टा-ध्यायी मूल ≡) न्यायदर्शन मन सूत्रपाठ ≡) देवनागरीवर्ण-माला)। यज्ञोपवीतशङ्कासमाधि -) संस्कृतप्रवेशिका =)॥ संस्कृत का प्रथम पु० पांचवींबार छपा)॥। द्वितीय तीसरी बार छपा -)। तृतीय फिर से छपा =)॥। भर्तृहरिनीतिशतक भाषा टीका ≡) चाणक्यनीति मूल)॥ बालचन्द्रिका (बालकों

को) -) गणितारम्भ (बालकोंको) -)॥ अङ्कगणितार्य्यमा ≡)॥ विदुरनीति मूल =) जीवसान्तविवेक -) पाखण्डमतकुठार (कबीरमत ख०)=) जीवनयात्रा (चार आश्रम) ≡) नीतिसार -)॥ हितशिक्षा (नामानुकूल गुण) -)॥ गीताभाष्य ३ अध्याय १) हिन्दी का प्रथम पुस्तक -) द्वितीयपुस्तक पं० रमादत्त कृत ≡) शास्त्रार्थ खुर्जा -) शास्त्रार्थ किराणा =) भजन पुस्तकें-भजनामृतसरोवर =) सत्यसङ्गीत)। सदुपदेश)। भजनेन्दु (बारहमासे, भजनादि) -) वनिताविनोद (स्त्रियों के गीत) =) सङ्गीतरत्नाकर =)* बुद्धिमती (मुं० रोशनलाल बैरिस्टर एटला रचित) ।) * सुन्दरीसुधार १) * सीताचरित्र सचित्र प्रथमभाग ॥।) स्वर्ग में सबजेक्ट कमेटी =)॥ * भूतलीला =)॥ * बाल्यविवाहनाटक -)॥ * शिल्पसङ्ग्रह ।-) आर्यतत्त्वदर्पण =) कर्मवर्णन)॥ स्वामीजी का स्वमन्तव्यामन्तव्य)॥ नियमोपनियम आर्यसमाज के)। आरती आधा पैसा । आर्यसमाज के नियम ≡)। सैकड़ा) २) हजार । सत्यार्थप्रकाश २) वेदभाष्यभूमिका २॥) संस्कारविधि १।) पञ्चमहायज्ञ ≡)॥ आर्य्याभिविनय ।) निघण्टु ।=) धातुपाठ ।=) वर्णोच्चारणशिक्षा -) गणपाठ ।-) निरुक्त १) इत्यादि आर्यधर्मसम्बन्धी अन्य पुस्तक भी हैं बड़ा सूची मंगाकर देखिये॥

व्याख्यान देने का सामान्य विज्ञापन जिस में चार जगह खानापूरी कर लेने पर सब का काम निकलता है मूल्य प्रति सैकड़ा =) डाक महसूल सब का मूल्य से पृथक् लिया जायगा । पता-भीमसेन शर्मा सरस्वती प्रेस-इटावा